कविता पाठ के लिए
मा. पंकज चौधरी सादर आमंत्रित हैं...

मा. पंकज चौधरी

का जन्म बिहार के सुपौल जिला के कर्णपुर में **15 जुलाई, 1976** *को हुआ। आपकी कविताएं और आलेख सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपके दो कविता संग्रह 'उस देश की कथा' एवं 'किस-किस से लड़ोगे' प्रकाशित हैं और तीसरा संग्रह 'अंतहीन लड़ाई' शीध्र प्रकाश्य है। आपने दो पुस्तकों 'आम्बेडकर का न्याय दर्शन' और 'पिछड़ा वर्ग' का सम्पादन भी किया है। आपकी कविताओं का अंग्रेजी, मराठी, बांग्ला, गुजराती, मैथिली और तेलुगु में अनुवाद हुआ है। आपको बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के 'युवा साहित्यकार सम्मान', प्रलेस का 'कवि कन्हैया स्मृति सम्मान', पटना पुस्तक मेला का 'विद्यापति सम्मान' और 'नई धारा रचना सम्मान' से सम्मानित किया जा चुका है।*

मोबाइल

9910744984, 9971432440

ई-मेल

pkjchaudhary@gmail.com

आविष्कार

बैसाख-जेठ की दोपहर में
पिताजी खेत पर से जब आते
धूप का रौद्र रूप
उनको ऐसे सूखा चुकी होती
जैसे पाताल को वह सूखा देती है।
उनकी लूंगी और बनियान पर
सफेद-सफेद धारियों के चकत्ते
निकले होते
उनके शरीर का सारा नमक
निकल चुका होता।
बैलों को खूंटे पर बांध
अपने को शक्तिहीन बताते
पिताजी ओसारे पर ढेर हो जाते।
मां चापाकल को खूब चलाकर
एक जग जल भरकर ले आती
उसमें मन भर चीनी डाल देती,
दो कागजी नीबू
उसमें निचोड़ डालती,
और आठ-दस पूदीने के पत्ते को
उसमें फेंट देती।
मां पिताजी को वह शरबत पिलाती
पिताजी का गला जैसे ही तर होता
उनमें जान आ जाती
जैसे ही उनमें जान आती
वे कह उठते
अभी दो कट्ठा खेत और हैं
कोड़ने को!

मेरा संघर्ष

एक ने मुझे डस्टबीन में डाल दिया
दूजे ने नौकरी से निकाल दिया
तीजे ने नजरबंद करने की कोशिश की
चौथे ने ब्लॉक कर दिया
पांचवें ने हुक्का-पानी
बंद करवा दिया
मेरा कसूर यही है कि
मैं जाति को अनलॉक करता हूं।

रास्ता

पहली बार
उस रास्ते से गुजर रहा था
तीन किलोमीटर की दूरी
तीन सौ किलोमीटर लग रही थी
लग रहा था कि
जैसे खाइयों-खंदकों में
गिरा जा रहा हूं,
पहाड़ों की चढ़ाई कर रहा हूं
पहाड़ों की चढ़ाई करते-करते
वहां से फिसल रहा हूं
झाड़-झंखार और जंगल
रास्ता रोक रहे हैं
धूल भरी आंधियों के बवंडर में
मैं खोता जा रहा हूं।
पैर अशक्त हो चुके हैं
आंखें निस्तेज
और कंठ सूख गया है।
दूरियां पाटे नहीं पट रही थीं।
उसी रास्ते जब लौटना हुआ
दुबारा-तिबारा फिर जाना हुआ
दूरियां तीन सौ किलोमीटर की
दो-एक किलोमीटर में सिमटने

लगीं।
रास्ता बनाने की यही कहानी है
पहले वह थकाती है, रुलाती है
फिर हंसाती है।

कच्चा माल

ये उन दिनों की बात है
जब मुझे नौकरी से
निकाल दिया गया था
आंदोलन को
मेरी जरूरत नहीं रह गई थी
समाज के लिए
मैं फालतू हो चुका था
प्रेमिका मुझे
कामांध मानने लगी थी
और पत्नी आवारा।
बच्चों ने मुझमें
दिलचस्पी लेना बंद कर दिया था
और मित्रों ने खोज-खबर
मां-पिता मुझे कुपुत्र मान चुके थे
और भाई-बहन निक्कमा।
मैं जीवन की निरर्थकता के बोझ से
दबा
आत्महत्या की ओर
कदम बढा रहा था।
इतना ग्मासान चल रहा था
मेरे साथ
और मैं अपने-आप को
सर्वथा निर्योग्य और
खाली समझ रहा था।
आज वही सब कुछ
एक-एक कर
कविता में उतर रहा है।

सांत्वना

कितनी राहत मिलती है
कितना सुकून पहुंचता है
चिंता कितनी कम हो जाती है
आत्मा का बोझ
कितना हल्का लगता है
आंसू कैसे छलक पड़ते हैं
जब किसी नाउम्मीद हो चुके
आदमी से
कोई यह कहता है-
'ग्बराओ नहीं तुम्हारा हो जाएगा।'
भले ही वह
झूठ ही क्यों न बोलता हो!

नए युग के शत्रु

जंग खा चुके विषयों
पिट चुके मुहावरों
ग्सि चुके शब्दों
आयातित और निर्जीव हो चुकी
भाषा
लूटने-पिटने की ध्वनियों
और अस्पष्ट उद्देश्यों से युक्त
हिंदी में कोई कविता लिखी जा
सकती है महाकवि,
उससे ज्यादा से ज्यादा अपनी
उपस्थिति दर्ज कराई जा सकती है
उससे नए युग के शत्रुओं से नहीं
लड़ा जा सकता महाकवि।

रीति

चलती ट्रेन में चढ़कर
सीटों पर कब्जा कर लेती है
पैसेंजर्स की आवारा भीड़
चलती बस में दौड़कर
सीटों को हथिया लेता है
यात्रियों का धकमपेल हुजूम
मेट्रो ट्रेन के फाटक खुलते ही
सीटों को छेक लेती है
यात्रियों की अधीर भीड़
शक्तिशाली पहुंच जाते हैं
अपने गंतव्य पर
कमजोर पड़े रह जाते हैं
प्लेटफॉर्म पर।

नियम

बदलो, बदलो
खुद को बदलो
नहीं बदलोगे
तो प्रकृति देगी तुम्हें बदल
काई
उसी पानी में है लगता
जो प्रवाहित होना नहीं चाहता
जंग
उसी लोहे में है लगता
जिसका इस्तेमाल नहीं होता
ऊसर
वही खेत हो जाता
जिसकी जुताई-बुआई नहीं होती
फफूंद
उन्हीं फल-फूलों में है लगते
जो रखे ही रह जाते
दुर्गंध
वही छाली देने है लगती
जिसे समय पर मथा नहीं जाता।
मनुष्य
बदलने को जब नहीं हो तैयारतब
प्रकृति ऐसे भी बदलती उन्हें।

एकाग्रता

पहाड़ पर चढ़ने लगो
तो ऊपर मत देखो
नीचे भी मत देखो।
ऊपर देखोगे
तो डर जाओगे
नीचे देखोगे
तो गिर जाओगे।